मध्यकालीन भारत **में जाति व्यवस्था**

ज्योति,
शोधछात्रा, इतिहास विभाग,
म.द.वि. रोहतक (हरियाणा)

सारांश

प्राचीनकाल में जाति–प्रथा की उपादेयता रही, बढ़ईगीरी का कार्य करता उसे बढ़ई, जो लोहे का कार्य करता उसे लुहार कहा जाने लगा था। कर्म, धर्म तथा मोक्ष की प्राप्ति में मनुष्य जाति–प्रथा की सीमाओं में बंधा था। वह अपनी कुशलता एवं दक्षता का प्रदर्शन समाज के समक्ष कर सकता था। कालान्तर में जाति–प्रथा कर्म के आधार पर न रह कर जन्म के आधार पर हो गयी जिसके कारण मनुष्य का विकास संभव नहीं रहा। उच्च वर्ण और निम्न वर्ण की खाई बढ़ गयी थी। इन सबसे परेशान होकर निम्न वर्ग के कुछ लोगों ने आक्रांताओं के अत्याचारों से परेशान होकर, लोभवश, दबाव में धर्म परिवर्तन कर लिया लेकिन उनकी स्थिति फिर भी नहीं बदली। विजेता मुसलमानों और भारतीय मुसलमानों में, जो लालचवश या अन्य कारणों से हिन्दुओं से मुसलमान बने थे, बड़ा अन्तर रहा। मुसलमानों में तो तुर्क और भारतीय मुसलमानों में ही अन्तर था और दूसरे शिया और सुन्नी का भी भेद था। इसी प्रकार हिन्दुओं में भी चतुवर्ण विद्यमान थे और और इनमें से एक–एक ही जाति अनेक वर्गों में बंट गई थी। जो भी हो मध्यकाल में जाति–प्रथा बड़े जोरों पर थी, जाति प्रथा के इसी अन्तर को इस शोध–पत्र में दिखाने का प्रयास करेंगे।

मुख्य शब्द : *जाति, अस्तित्व, मध्यकाल, वर्ण, भारतीय मुसलमान, विजेता मुसलमान*

प्रस्तावना

भारत में जाति–व्यवस्था बहुत प्राचीन है। मध्यकाल और आधुनिक काल में भी इसका अस्तित्व रहा है। कहने को तो आधुनिक काल में जाति–प्रथा समाप्त हो गयी है परन्तु वस्तुतः अभी इसे मिटाया नहीं जा सका है। मध्यकाल में तो मुसलमानों में भी आपस में बड़ा मतभेद था। तुर्क लोग भारतीय मुसलमानों को भी सम्मान नहीं देते थे। वे उन्हें गैर समझते थे, अपनी जाति का नहीं मानते थे। यही कारण है कि तुर्क शासकों ने भारतीय मुसलमानों को कभी सरकारी नौकरी में उच्च पद नहीं दिए। विजेता मुसलमानों और भारतीय मुसलमानों में, जो लालचवश या अन्य कारणों से हिन्दुओं से मुसलमान बने थे, बड़ा अन्तर रहा। गुलाम वंश के अधिकतर शासक भारतीय मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। डॉ. आशीर्वादीलाल के शब्दों में 'तुर्क जाति विभेद की नीति में विश्वास करती थी और इसलिए उन्होंने भारतीय मुसलमानों तक को अपनी शक्तियों से ही नहीं अपितु सरकारी नौकरियों तक से वंचित कर रखा था। यह विलक्षण बात है कि तुर्क शासक मुसलमानों से घृणा करते थे, फिर भी उनके

शासनकाल में मुसलमानों की संख्या में वृद्धि हो गई थी। इसका एक कारण यह था कि तुर्क हिन्दुओं पर अत्यधिक अत्याचार करते थे। उन्हें धर्म–परिवर्तन के लिए मजबूर करते थे। उन अत्याचारों को सहन करने में असमर्थ बहुत से हिन्दू मुसलमान बन जातन में ही कल्याण देखते थे। परन्तु मुसलमान बनकर भी उन्हें राहत नहीं मिली थी। अलाउद्दीन के शासन काल में मुसलमानों को राहत मिली थी। हिन्दू से मुसलमान वे इसलिए बने थे कि उन्हें अत्यन्त कष्ट दिए जाते थे, जैसा कि डॉ. आशीर्वादीलाल के कथन से स्पष्ट होता है 'हमारे देश के इतिहास के किसी भी युग में पारस्परिक अाविा परवर्ती ब्रिटिश युग में भी नहीं – मानव जीवन का नृशंसतापूर्ण नाश नहीं किया गया जितना तुर्क–अफगान शासन के इन ढाई सौ वर्षों में किया गया था।'[1]

जो भी हो मध्यकाल में जाति–प्रथा बड़े जोरों पर थी। मुसलमानों में एक तो तुर्क और भारतीय मुसलमानों में ही अन्तर था और दूसरे शिया और सुन्नी का भी भेद था। इसी प्रकार हिन्दुओं में भी चतुवर्ण विद्यमान थे और और इनमें से एक–एक ही जाति अनेक वर्गों में बंट गई थी।

मध्ययुग में हिन्दुओं में उच्च वर्ण एवं निम्न वर्ण एवं निम्न वर्ण में कई जातियां थीं। ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और वैश्यों का समाज में ऊंचा स्थान था, इसके विपरीत शूद्रों की स्थिति पहले से और अधिक बिगड़ गई थी। शूद्रों की इस दयनीय स्थिति का लाभ मुसलमान लोग उठाने की कोशिश करते थे और उन्हें इसमें काफी सफलता भी मिलती थी। सवर्ण हिन्दुओं के घृणाभाव से परेशान होकर तथा मुसलमानों द्वारा दिए गए प्रलोभन से तथा दण्ड आदि के भय से शूद्रों में से बहुतों ने मुसलमान धर्म को स्वीकार कर लिया था। विभिन्न प्रकार के उद्योग–धन्धों व्यवसाय करने वाले लोगों को व्यवसायों के आधार पर अलग–अलग जाति का मान लिया गया था, यानी पेशा जाति का आधार चल पड़ा था। जो बढ़ईगीरी का कार्य करता उसे बढ़ई, जो लोहे का कार्य करता उसे लुहार कहा जाने लगा था। इतना जरूर है कि उच्च वर्ग के लोगों की तुलन में निम्न वर्ण के लोगों की हीन दृष्टि से देखा जाता था। शुद्रों से भी हीन समझी जाने वाली भी कुछ जातियां थी जैसेकि अलबरूनी ने लिखा है, 'शूद्रों के बाद अन्त्यज नामक लोग जो विभिन्न प्रकार की सेवाएं करते हैं, जिनकी सेवाएं किसी वर्ग में नहीं की जाती है, किन्तु किसी विशेष व्यवसाय या शिल्प के सदस्य हें, वे आठ भागों में विभक्त है जो स्वतन्त्रतापूर्णक एक–दूसरे से धोबी, चमार और जुलाहे को छोड़कर अन्तर्जातीय विवाह करते हें, क्योंकि कोई भी उनसे किसी प्रकारका सम्बन्ध रखने को नहीं झुकेगा।' जातियों की संख्या बहुत थी और वह 64 पहुंच गई थी।[2]

इन जातियों को दो विभागों में बांट सकते है। एक तो अनुलोम विभाग में और दूसरे प्रतिलोम विभाग में। अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से उपजातियों की संख्या बढ़ी थी। उपजातियों के विभागों में गौत्र नाम से जाना जाता था। जो लोग उच्च वर्ग के पुरुषों तथा निम्न वर्ग की स्त्रियों से उत्पन्न होते थे उन्हें अनूलोम वर्ण में गिना जाता था और जो निमन जाति के पुरुष और उच्च जाति की स्त्रियों से

उत्पन्न थे उन्हें प्रतिलोम वर्ग में गिना जाता था। अनुलोम वर्ग की जातियां द्विज मानी जाती थीं। उन्हें यज्ञोपवीत रखने का अधिकार था।[3]

उस युग में जाति प्रथा होतु हुए भी जाति के कड़े नियम नहीं थे। एक जाति के व्यक्ति दूसरी जाति, वाले के व्यवसाय भी अपना सकते थे। कुछ इतिहासकारों ने बड़े अतिरंजित वर्णन किए हैं जो सत्यता से परे हैं। अलबरूनी ने लिखा है कि 'वैश्यों को वैदिक मन्त्र सुनने की आज्ञान नहीं थी और यदि कोई वैश्य वैदिक मन्त्र का उच्चारण कर भी लेता था तो उसकी जीभ काट ली जाती थी।[4] यहां मुख्य–मुख्य जातियों का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है –

ब्राह्मणों का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था परन्तु इस समय तक उनमें परिवत्रन आ गया था। वे अपने परम्परागत गौरव को खो रहे थे। वे अपने मानसिक विकास के कार्यों, आध्यात्मिक उन्नति के प्रयत्नों की ओर से उदासीन रहने लगे थे और आर्थिक विकास की ओर ध्यान देने लगे थे। वे पूजा–पाठ के साथ–साथ अन्य कार्य भी करने लगे थे। वे धन अर्जित करने के लिए कृषि व्यवसाय भी करने लगे थे। आवश्यकता पड़ने पर वे अपने हाथ से हल भी चलाते थे। धन कमाने के कार्यों में पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने के कारण ब्राह्मण लोक वैदिक साहित्य के अध्ययन जैसे कार्य में कम समय दे पाते थे। कुछ ब्राह्मणों ने फारसी का अध्ययन आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार विदेशी भाषा का ज्ञान अर्जित करके प्रशासकीय पदों पर भी नियुक्त हो गए थे। उदाहरण के लिए ख्वाजाजहां पहला ब्राह्मण था, जो मुसलमानों के प्रभाव में आकर वह भी मुसलमान बन गया था और फिरोजशाह का प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ था। इससे स्पष्ट है कि शूद्र ही मुसलमान नहीं बने थे अपितु धन और पद के लोभ से कुछ ब्राह्मणों ने भी इस्लाम धर्म को अपना लिया था।[5]

कुछ ब्राह्मण अपने परम्परागत पेशे को ही अपनाए हुए थे। वे अध्यापन कार्य करते थे, पाठशालाहओं का संचालन करते थे और धार्मिक कार्य करते थे। ब्राह्मण निःशुल्क शिक्षा देते थे। इसी जाति के व्यक्ति मन्त्रिमण्डल और न्याय संबंधी पदों पर नियुक्त किए जाते थे। ब्राह्मणों की अनेक शाखाये थीं जैसे सरयूपारी, कन्याकुब्ज, सारस्वत, गौड़ और शकद्वीपी आदि। इनमें से अधिकतर नाम ब्राह्मणों के निवास स्थल के नाम पर पड़े थे जेये गौड़ देश के निवासी गौड़ कहलाए और सरयू नदी के तट पर रहने वाले सरयूपास।[6]

ब्राह्मणों की तरह क्षत्रिय लोग भी समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त किए हुए थे। राजवंशीय क्षत्रिय समाज में अधिक सम्माननीय माने जाते थे। राजवंश से संबंधित क्षत्रियों का ब्राह्मण भी सम्मान करते थे। इस संबंध में अल्तेकर महोदय ने बताया है कि ब्राह्मण तथा अन्य कुछ जातियां क्षत्रियों को सम्मान देती थीं। यह सम्मान उन्हीं क्षत्रियों को मिलता था जिनमें से राजा का चुनाव होता था। क्षत्रियों का मुख्य कार्य युद्ध करना था। वे देश की सुरक्षा के लिए तैयार रहते थे। उनमें देश प्रेम, राजभक्ति, वीरता, उदारता जैसे गुण विद्यमान थे। अनाथों और धर्म की रख क्षत्रिय लोग ही किया करते थे। राजनीतिक

सत्ता यतया क्षत्रियों के हाथ में थी। इतिहासकार टॉड ने क्षत्रियों की अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। ब्राह्मणों की तरह क्षत्रियों की भी अनेक उपजातियां थीं। इन उपजातियों की संख्या 36 थी। ये सभी उपजातियां लड़ने का कार्य नहीं करती थीं और न ही इन सभी को एक–सा सम्मान मिलता था। राजवंश के संबंधित क्षत्रियों का तो ब्राह्मण भी सम्मान करते थे परन्तु अन्य क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों को ऊँचा स्थान देते थे। लड़ाई के अलावा क्षत्रियों ने भी ब्राह्मणों की तरह बहुत से धन्धे अपना रखे थे। यह बात अल्तेकर के वर्णन से स्पष्ट है। इनमें से राजपूत लोग अधिकतर सेना में लड़ने का कार्य करते थे। अपनी बहादुरी के बल पर मुग़लकाल में उन्हें शाही सेना में बड़े ऊँचे पद प्राप्त थे।[7]

पूर्वमध्यकालीन समाज में यह एक नई ही जाति उत्पन्न हुई थी। यह कितनी प्राचीन है यह तो निश्चित नहीं है। जो व्यक्ति लिपिक के पद पर कार्य करते थे उन्हें कायस्थ कहा जाता था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की तरह कायस्थों में भी कई उपजातियां थीं। अलग–अलग स्थानों पर रहने वाले कायस्थ लोगों को स्थान से मिलते–जुलते नाम से भी पुकारा जाता था। जैसे – मथुरा में रहने वाले कायस्थ माथुर कहलाए। इसी प्रकार कायस्थों में कानूनगो और राजजादों आदि उपजातियां थीं। कायस्थ लोग प्रायः माल गुजारी के पदाधिकारी, मुंशी अथवा लिपिक होते थे।

वैश्य मुख्य रूप से वाणिज्य एवं व्यवासाय करते थे। इसके अलावा कृषि तथा अन्य उद्योग–धन्धों में भी रूचि रखते थे। मध्यकाल में वैश्यों की सामाजिक दशा अच्छी नहीं थी। व्यवहार में वैश्यों के साथ शूद्रों का सा व्यवहार किया जता था। अल्तेकर आदि ने बताया है कि वैश्यों की स्थिति शूद्रों के समान थी। यह बात बौद्धों के ग्रंथों से भी प्रमाणित होती है। बौद्धों के ग्रंथों में उल्लेखित है कि वैश्यों के विवाह संबंधी तथा अन्य प्रकार के रीति–रिवाज समान थे। शूद्रों की तरह वेद–मन्त्रों का उच्चारण करने पर वैश्यों को भी दण्ड दिया जाता था।[8] अल्बूरूरी की रचना में ऐसे अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि वह धर्मशास्त्र साहित्य से पूर्णतया परिचित था। ऐसी अवस्था में यदि वह ऐसा विवरण प्रस्तुत करता है जो उक्त विषय पर स्मृतियों के प्रत्यक्ष विरोध में पड़ता है तो इसके कारण सहज ही कल्पना की जा सकती है कि स्मृतियों के विधान होते हुए भी व्यावहारिक रूप में वैश्यों की स्थिति भी शूद्रों के स्तर तक गिर चुकी थी।[9]

ब्राह्मण, क्षत्रियों और वैश्यों के बाद शूद्रों का स्थान था। इन्हें समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता था। ब्राह्मणों की तरह शूद्रों में भी कई जातियां थीं। जैसे – धोबी, चमार, जुलाहे, भांड, अभेटी, बंजारा और भट्टारक आदि और इनकी भी उपजातियां थीं। शूद्रों के दो वर्ग थे। एक तो ऐसा वर्ग था जिसे छुआ जा सकता था। चाण्डाल ऐसी ही जाती थी। यह ब्राह्मणों और वैश्यों के प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न हुई थी। यह जाति अधिकतर नगर के बाहर रहती थी। शूद्रों को समाज में निम्न स्थान प्राप्त था।[10] इसलिए इनमें हीन भावना उत्पन्न हो गई थी। मुसलमान धर्म–प्रचारकों ने इस अवसर का लाभ उठाकर बंगाल आदि में इन्हें मुसलमान बना लिया था।

मध्यकाल में हिन्दू समाज के सल्तनत काल में काफी परिवर्तन हुए थे। परन्तु मुगलकाल में विशेष क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। मुसलमान शासकों के कठोर और पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण हिन्दुओं में कई बुराईयां आ गई थीं। उनमें हीनता की भावना आ गई थी। शासकों के कठोर व्यवहार के कारण हिन्दु लोग कायर और चापलूस होते जा रहे थे। वे स्वाभिमानपूर्वक जीवनयापन नहीं कर सकते थे। जैसा कि डॉ. श्रीवास्तव ने बताया है 'दमनकारी मुगल शासन का सबसे बुरा प्रभाव हिन्दुओं पर यह पड़ा कि वे न तो सच बात कह सकते थे और न लिख सकते थे। वे अपने को मुसलमानों के समान भी नहीं समझ सकते थ। इस्लाम के सिद्धान्तानुसार शासन करने वाले मुगलों पर सबसे बड़ा कलंक यह है कि उनके शासनकाल में हिन्दुओं का नैतिक पतन हो गया।' इस प्रकार हिन्दुओं की स्थिति अच्छी नहीं थी।[11]

कुछ विद्वानों ने जाति प्रथा की उपयोगिता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। डॉ. अशरफ के अनुसार हिन्दू समाज को सजीव रखने में जाति–प्रथा का विशेष योगदान रहा है। सम्भवतः किसी युग में जाति–प्रथा हिन्दू समाज के लिए उपादेय रही हो, परन्तु मध्ययुगीन समाज पर तो निश्चत रूप से इसका प्रभाव विनाशकारी रहा है। यह भारतीय समाज के लिए घातक ही नहीं अपितु अभिशाप्स्वरूप सिद्ध हुई।[12]

सभी लोग अपने जन्म के अनुसार ही कर्म का चयन कर सकते थे। आठवी सदी में जब मुसलमानों का आक्रमण प्रारम्भ हुआ, तो देश की सुरक्षा का एकमात्र उत्तरदायितव राजपूतों को वहन करना पड़ा। देश की अधिकांश जनता देश की रक्षा के प्रति उदासीन थी। राजपूतों ने जाति प्रथा तथा कर्म के आधार पर उन्हें सेना में स्थान नहीं दिया। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण जनता में राष्ट्रीयता की भावना का विकास न हो सका। जवाहरलाल नेहरू ने इसके विनाशकारी प्रभाव के संबंध में लिखा है कि जाति–प्रथा के कारण राजनीतिक सहयोग तथा एकता का अभाव था। बाह्य आक्रमण की सफलता तथ भारतवर्ष में विदेशी शासन की स्थापना इसी का परिणाम था।

वैश्य कुल के लोग विद्या में पारंगत, युद्धकला में दक्ष होते हुए भी न ही वेद का अध्ययन कर सकते थे और न सैनिक सेवा। इस प्रकार जाति–प्रथा के कारण मनुष्य का विकास संभव नहीं था और न तो वह अपनी कुशलता एवं दक्षता का प्रदर्शन समाज के समक्ष कर सकता था। कर्म, धर्म तथा मोक्ष की प्राप्ति में मनुष्य जाति–प्रथा की सीमाओं में बंधा था।

शूद्रों को समाज में उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। इस्लाम की सामाजिक समानता से आकृष्ट होकर अधिकांश शूद्रों ने हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार हिन्दू धर्म की शक्ति क्षीण होने लगी। भक्ति आछोलन के प्रमुख समाज सुधारक रामानन्द, कबीर, नानक और चैतन्य प्रभू ने शूद्रों को प्रतिष्ठित स्थान देकर हिन्दू धर्म की रक्षा करने का सराहनीय प्रयास किया। जाति–प्रथा के कारण हिन्दुओं में सहयोग एवं एकता का इतना अभाव था कि मुस्लिम प्रशासन में अनेक यातनाओं को सहने के बावजूद हिन्दू प्रजा ने प्रशासन के दोषों के विरुद्ध एक स्वर से कभी आवाज उठाने का प्रयास नहीं किया। मध्ययुगीन भारतीय इतिहास इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि राष्ट्रीय स्तर

पर न तो सभी शासक और न ही सम्पूर्ण जनता कभी मिल सकी। हम कह सकते हैं कि प्राचीनकाल में भले ही जाति–प्रथा की उपादेयता रही हो, मध्ययुगीन समाज के लिए यह व्यवस्था निश्चित रूप से घातक सिद्ध हुई।[13]

निष्कर्ष :

इस हम अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि हिन्दू धर्म में शूद्रों को समाजिक उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। इस्लाम की सामाजिक समानता से आकृष्ट होकर अधिकांश शूद्रों ने हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। तुर्क हिन्दुओं पर अत्यधिक अत्याचार करते थे। उन्हें धर्म–परिवर्तन के लिए मजबूर करते थे। उन अत्याचारों को सहन करने में असमर्थ बहुत से हिन्दू मुसलमान बन जाने में ही कल्याण देखते थे। परन्तु मुसलमान बनकर भी उन्हें राहत नहीं मिली थी। हम कह सकते हैं कि प्राचीनकाल में भले ही जाति–प्रथा की उपादेयता रही हो, मध्ययुगीन समाज के लिए यह व्यवस्था निश्चित रूप से घातक सिद्ध हुई।

सन्दर्भ

[1] श्रीवास्तव, ए.एल., दिल्ली सल्तनत, शिवलाल एण्ड अग्रवाल कम्पनी, आगरा, 1965, पृ. 378
[2] अलबेरूनी वर्णित भारत, अनुवाद संतराम बी.ए., जयपुर, 1994, पृ. 63
[3] वही, पृ. 63–64
[4] वही, पृ. 63–64
[5] निजामी, के.ए., रीलिजन एण्ड पॉलटिक्स इन इण्डिया, दिल्ली, 2009, पृ. 138
[6] श्रीवास्तव, ए.एल., वही, पृ. 57–58
[7] टॉड, कर्नल, राजस्थान का इतिहास, प्रथम भाग, अनुवादक केशव ठाकुर, जयपुर, 2003, पृ.358
[8] निजामी, के.ए., रीजिनल एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, दिल्ली, 2009, पृ. 69
[9] अलबेरूनी वर्णित भारत, वही, पृ. 63'64
[10] वही, पृ. 64
[11] श्रीवास्तव, ए.एल., भारत का इतिहास, आगरा, पृ. 135
[12] अशरफ, के.एम., लाईफ एण्ड कंडीशंस दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, दिल्ली, 1959, पृ. 181
[13] झारखण्ड चौबे एवं कन्हैयालाल श्रीवास्तव, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृ. 8–9